REVIEW OF RESEARCH

आधुनिक भारत में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलनः एक समीक्षा

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 8 | MAY - 2019

मानसी कुमारी

एम० ए० (इतिहास),नालंदा खुला विश्वविद्यालय,पटना

सारांश :

अंग्रेजी साम्राज्यवाद की राजनैतिक तथा आर्थिक नीतियां भारत के लिए अत्यन्त हानिकारक थीं परंतु यह मानना पड़ेगा कि मुख्यतः यह अंग्रेज और अंग्रेजी भाषा ही थी जिसके माध्यम से भारत यूरोप के सम्पर्क में आया और इसका पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान, विज्ञान, राजनैतिक तथा सामाजिक विचारों से साक्षात्कार हुआ।

यह अंग्रेज ही थे जिनके साथ–साथ मुद्रणालय (Printing press) भी आया। य् तो अकबर के इबादत खाना में आए पुर्तगाली पादरियों ने अकबर को यह बताया था कि अब उनके देश में कोई हाथ से पुस्तकें नहीं लिखते अपितु उन्हें 'छाप' लेते है, परंतु अकबर तथा उसके उत्तराधिकारियों ने मुद्रणालय भारत में लाने अथवा स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया और भारत ज्ञानवर्धन की दौड़ में पिछड़ गया। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी यह प्रयत्न नहीं किया।

मुख्य शब्दः– आर्थिक नीतियां, आधुनिक भारत, सामाजिक आन्दोलन, सांस्कृतिक आन्दोलन

प्रस्तावना

सन् 1857 के महान् विद्रोह के दिनों में ही मैकॉले पद्धति का अनुशरण करते हुए अंग्रेजों ने कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में तीन विश्वविद्यालय स्थापित किए। वास्तव में 19वीं शताब्दी के द्वितीय तथा तृतीय दशक में भारत में अनेक मुद्रणालय स्थापित हुए और अनेक छोटी बड़ी पुस्तकें अंग्रेजी तथा स्थानीय भाषाओं में छपने लगीं। अधिक जागरूक लोगों ने यूरोप से भी पुस्तकें मंगवाई और उनका अध्ययन किया। बड़े–बड़े नगरों में लोगों ने व्याख्यानों द्वारा इस ज्ञान को लोगों तक पहुँचाया। फलस्वरूप बड़े–बड नगरों में एक ऐसा मध्यम वर्ग उभरा, जो पाश्चात्य राजनैतिक राष्ट्रवाद तथा उदार उग्र सुधारवादी विचारधारा (litiereal radical thiought) से परिचित हो गया। इन विदेशी विचारकों में थे; मिल्टन, शैली, बैन्थ्रम, रूसो, वोल्टेयर तथा कार्ल मार्क्स प्रमुख थे।

पसीवेल स्पीयर ने ठीक ही कहा है कि ''यह नया मध्यम वर्ग, ठीक–ठीक संयजित, अखिल भारतीय वर्ग था, जिन की पृष्ठभूमि कितनी ही भिन्न क्यों न हो, परंतु उनके ज्ञान, विचार तथा मानदण्डों में समानता थी..... यह एक छोटा सा अल्पसंख्यक दल था, परंतु यह बहुत गतिशील था..... इनमें उद्देश्य तथा आशा की एकता थी।'' यह नया मध्य वर्ग आधुनिक भारत की आत्मा बन गया और समय पाकर इन्हीं ने समस्त भारत को इस नई प्रयत्न किया ईसाई पादरियों ने उन्होंने भारत में ईसाई धर्म के प्रचार हेतु मुद्रणालय स्थापित किए और फिर यह प्रचलित हुए। उन्होंने ही एक भारतीय भाषा का शब्दाकोष बनाया। पहले पहल अंग्रेजी समाचार पत्रिकाएं छपने लगी और फिर स्थानीय भाषाओं में। इनमें विदेशों की गतिविधियों का विवरण होता था। अपनी टीका टिप्पणियां तथा कुछ मौलिक लेख। इससे न केवल साहित्य की रचना हुई अपितु भाषाओं का मानकीकरण (Standardization) भी हुआ और यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाए तो भारतीय संविधान में सूचिबद्ध अधिकतर भाषाओं का विकास इन्हीं मुद्रणालयो के कारण ही हुआ और यह सब 1857 के उपरान्त ही हुआ।

भावना से भर दिया। इस अंग्रेजी पढ़े–लिखे वर्ग ने अखिल भारतीय राजनैतिक संस्था बनाने का विचार दिया जो जन्त में अखिल भारतीय कांग्रेस के रूप में सामने आई तथा इसने समस्त भारत को भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व प्रदान किया, स्वतंत्रता से पूर्व भी और स्वतंत्रता के उपरान्त भी।

हिन्दी साहित्यः– हिंदी साहित्य का विकास 19वीं शताब्दी आरंभ से ही विकसित हुआ पहले की रचनाएं बृजभाषा अथवा अवधी में ही होती थी। परंतु अब खड़ी बोली में साहित्य रचा जाने लगा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (नाटककार तथा निबन्ध लेखक, 1846–84) को प्रायः आधुनिक हिन्दी के बनाने वालों में गिना जाता है। परंतु जो हिन्दी की सेवा मुंशी प्रेमचन्द्र (1880–1936) उपन्यास तथा कथा लेखक ने की, वह अद्वितीय है। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (कवि), जयशंकर प्रसार (कवि तथा नाटककार), रामचन्द्रशुल्क (आलोचक) इत्यादि ने हिंदी साहित्य को अत्यन्त समृद्ध बनाया। बीसवीं शताब्दी में सुमित्रा नंदन पन्त, महादेवी वर्मा, (छायावाद की कवियित्री), रामकुमार वर्मा तथा जैनेन्द्र कुमार आदि तो आज भी अत्यन्त चाव से पढ़े जाते हैं।

उर्दू

उर्दू का जन्म दिल्ली में हुआ। विदेशी पठान सेना तथा स्थानीय लोगों के परस्पर सम्पर्क से इस भाषा ने जन्म लिया। इसकी लिपि, व्याकरण इत्यादि फारसी भाषा पर आधारित थी और यह दक्षिण से पश्चिम की ओर लिखी जाती है। खड़ी बोली की भांति उर्दू भाषा का अधिकतर साहित्य 19वीं तथा 20वीं शताबदी में ही पनपा। परन्तु इस पर फारसी भाषा की छाप अधिक थी यद्यपि इसमें हिंदी के शब्दों का प्रयोग भी होता था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि कई प्रांतों मे, विशेषकर उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश की कई भारतीय रियासतों ने तथा कई अंग्रेजी प्रान्तों में यह प्राचीन फारसी भाषा के स्थान पर न्यायालयों तथा पुलिस भी भाषा बन गई। इसमें पहले पहल कविता लिखने की प्रथा चली। मुशाअरे (कवि गोष्ठी अथवा कवि सम्मेलन) होने लगी। सबसे मनोरंजक बात यह थी कि कई अंग्रेजी ने भी उर्दू की कविताएं लिखीं और ये कवि गोष्ठियों में भाग लेते थे। इसके अतिरिक्त उर्दू गद्य का भी जन्म हुआ। उर्दू के लिखने वालों में से प्रमुख नाम थे, असदुल्ला खं गालिब (1806–69) जिन्होंने फारसी में भी कविताएं लिखी, अल्ताफ हुसैन पानीपती (1837–1914), जिन्हें लोग हाली के नाम से भी याद करते हैं, अकबर इलाहाबादी (1846–1921), बृज नारायण, 'चकबस्त' (1882–1926), पंडित रत्ननाथ सरशार (1873–1938) जिन्होंने 'फसाना आजाद' लिखा के नाम प्रमुख हैं। स्मरण रहे कि मुंशी प्रेमचन्द्र ने भी आरंभिक साहित्य उर्दू में ही रचा।

तमिल साहित्य

प्राचीन तमिल तो बहुत समृद्ध था ही परन्तु वह प्रायः कविता के रूप में था। आधुनिक तमिल गद्य, पद्य, नाटक, लघु कथा तथा उपन्यास तो 19वीं और 20वीं शताब्दी में ही पनपा। इस भाषा के लेखकों में कुप्पुस्वामि, मद्लियर (उपन्यासकार), आर. कृष्णामूर्ति (लघु कथा लेखक), चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (निबन्ध लेखक तथा लघु कथा लेखक) प्रसिद्ध हैं परंतु जो योगदान सुब्रह्मण्य भारती (1882–1921) ने दिया वह अद्वितीय है। कई बार यह मानना कठिन हो जाता है कि एक व्यक्ति जो केवल 39 वर्ष की आयु ही पा सका, इतना कुछ लिख गया है, जो बड़े–बड़े साहित्यकार इससे दुगनी आयु प्राप्त करने वाले भी नहीं लिख सकें।

मुख्य रूप से हम यह कह सकते हैं कि 19वीं तथा 20वीं शताब्दी के भारतीय भाषाओं के साहित्य में हमें कथावस्तु लेखन शैली तथा संस्कृति में पूव तथा पश्चिम का सम्मिश्रण मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रमुख यूरोपीय लेखकों की रचनाओं का भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी हुआ जिनमें शक्सपीयर, ऑलस्टाय, विक्टर ह्यूगो, बर्नर्ड शॉ तथा टी. एस. ईलियट जैसे नाम प्रमुख हैं।

इन सभी लेखको में से डॉ. रवीन्द्रनाथ टैगोर, मुंशी प्रेमचन्द्र सुब्रह्मण्य भारती तथा मुहम्मद इकबाल के नाम प्रमुख हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर (1861–1941)

रवीन्द्रनाथ टैगोर एक बंगाली कवि तथा रहस्यवाद से प्रभावित चिन्तक थे। उन्हें 1913 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से पाश्चात्य जगत को भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का प्रभावशाली ढंग से अवगत कराया और पाश्चात्य जनजीवन और मूल्यों को भारत ने उनके माध्यम से समझने का प्रयास किया।

रवीन्द्रनाथ टैगोर महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर के पुत्र थे। उन्होंने छोटी आयु मे ही कविताएं लिखना आरंभ कर दिया था। 1880 तक ही वह कई पुस्तकें प्रकाशित कर चुके थे और फिर अ 1890 में उन्होंने 'मानसी' प्रकाशित की तो यह स्पष्ट था कि वह प्रौढ़ और विकसित मेघा के स्वामी है। इसमें उनकी कुछ सर्वश्रेष्ठ कविताएं संकलित हैं। शिल्प विधान की दृष्टि से कुछ तो बंगला काव्य में पूर्णरूपेण नवीन प्रयेग थे। इनकी सामाजिक राजनैतिक चेतना की परिचायक कविताएं भी इसमें सम्मिलित हैं।

अपने पिता की जागीर की देखभाल करने के लिए 1891 में वह सियालदाह और सैयदपुर चले गए वहां उन्हें ग्रामीण लोक जीवन को निकट से देखने का अवसर मिला। ग्रामीणों की निर्धनता तथा पिछड़ेपन के प्रति सहानुभूति उनकी अधिकांश परवर्ती रचनाओं का मुख्य स्तर बना। मानव जीवन के अभावों तथा उनकी कठिनाइयों को केन्द्र बिन्दु बनाकर लिखी उनकी कहानियां 'गल्प गुच्छ' (1912) मे संग्रहीत हैं। देश की राजनैतिक तथा सामाजिक समस्याओं में उनकी रूचि बढ़ी परंतु उन्होंने भारत की समस्त राजनैतिक तथा सामाजिक समस्याओं का समाधान स्वतंत्रता में ढूंढ़ने का कभी प्रयत्न नहीं किया। सियालदाह में रहते हुए बंगाल के ग्रामीण के प्रति उनका अनुराग बढ़ा। गंगा ने उनको सर्वाधिक आकर्षित किया। सम्भवतः उनकी रचनाओं में गंगा की छवि बार–बार देखने को मिलती है। इस अवधि में उनके अनेक संग्रह प्रकाशित हुए सोनर तरी 1893 (सोने की नाव), चित्रा (1896), चैताली (देर की फसल), (1896), कल्पना (स्वप्न), तथा क्षणिक (दोनो 1900), नेवेद्य (उपहार) 1901 एवं दो काव्य नाटक चित्रागंदा (1892) मालिनी (1895) और एक अन्य पुस्तक चित्र (1913)।

दुःख के वर्षो ने टैगोर की कुछ सर्वश्रेष्ठ काव्य रचनाओं को प्रेरित किया। 1902 और 1907 के बीच उनकी पत्नी, पुत्री और फिर पुत्र का निधन हो गया था। 1910 में एक अंग्रेज येट्स (W.B. Yeats) ने उनके काव्य संग्रह 'गीतांजलि' (Song offering) का अंग्रेजी में अनुवाद किया तथा प्रस्तावना लिखी जिस पर उन्हें 1913 मे 'नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। 1915 में भारत की अंग्रेजी सरकार ने उन्हें 'सर' की उपाधि से सम्मानित किया परतु 1919 में अमृतसर के जालियावाला बांग के हत्याकांड के विरोध में उन्होंने यह उपाधि वापस कर दी।

अपनी विविध गतिविधियों के होते हुए भी टैगोर बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखक थे। जीवन के अन्तिम 25 वर्षो में इनके 21 संग्रह प्रकाशित हुए। इनका अधिकांश भाग उन्होंने यूरोप, अमरीका, चीन, जापान, मलाया और इन्डोनेशिया की यात्रा तथा भाषणों में बिताया। उनकी अनेक रचनाओं के अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हुए जिनमें से कुछ का अनुवाद उन्होंने स्वयं ही किए परंतु अंग्रेजी रूपांतर मौलिक बंगला कृतियों से कुछ नीचे स्तर के ही हैं।

यद्यपि उनके उपन्यास और कहानियां, कविताओं की तुलना में कम महत्वपूर्ण हैं, परंतु उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। गोरा (1907–10) उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। टैगोर एक नैसर्गिक संगीतकार थे। उन्होंने अपनी सैकड़ों कविताओं को संगीतबद्ध किया। वह देश के प्रमुख चित्रकारों में से एक थे।

सी. विलियम रेडिस (C William Redice) के अनुसारः–

क्या दो रवीन्द्रनाथ टैगोर थे? अथवा एक रवीन्द्रनाथ और एक टैगोर थे? मैं वर्षो तक इस प्रश्न से जूझता रहा। यह नामावली की जटिल समस्या को रेखांकित करता है। भारत के महानतम आधुनिक लेखक के विषय में लिखते समय किस नाम का उपयोग करें? बंगला में वह रवीन्द्रनाथ के रूप में प्रसिद्ध हैं। रवीन्द्रनाथ के रूप में वह सर्वश्रेष्ठ बंगला कवि है। उनके नाम की महिमा ने अनेक बंगला कवियों को अभिभूत किया। उनसे अभिभूत होकर इन कवियों ने उन पर अनक कविताएं रचीं। कुछ ने उन पर व्यंग्य भी किए। रवीन्द्रनाथ काव्य मण्डल के सूर्य हैं, शेष कवि उनके चारों ओर घूमने वाले उपग्रह हैं। स्वयं रवीन्द्रनाथ भी इससे अनभिज्ञ नहीं थे। उन्होंने एक लघुकविता में लिखा है–

कितना सरल है
उड़ाना उपहास सूर्य का
प्रकाश जिसस वह प्रकाशित है
स्वयं उसका अपना है।

उपर्युक्त पंक्तियां रेडिस के शब्दों का रूपांत मात्र है न कि रवीन्द्रनाथ के बंगला शब्दों का, परन्तु ये शब्द स्वाभिमानी आलोचना के प्रत संवेदनशील, निर्भीक, सत्य पर अडिग, महानता के प्रति सचेत–बंगला रवीन्द्रनाथ के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करते हैं। नोबेल पुरस्तकार मिलने पर, एक विशेष रेलगाड़ी द्वारा एक विशाल प्रतिनिधि मण्डल जब उनका अभिनन्दन करने शान्ति निकेतन पहुंचा तब भी उनका यही व्यक्तित्व मुखरित हुआ। उन्होंने इस प्रतिनिधि मण्डल को व्यंगात्मक स्वर में यह टिप्पणी करके लौटा दिया कि जा लोग कल तक उनके प्रति कटु थे वही आज उनको बधाई दे रहे हैं।

परन्तु क्या हम इस तथ्य को नकार सकते हैं कि एक टैगोर का अस्तित्व भी था। साहित्य का नोबेल पुरस्कार रवीन्द्रनाथ को नहीं टैगोर को प्राप्त हुआ था। पुरस्कार से जिन पुस्तकों को ख्याति मिली तथा जिनका विश्व की प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हुआ, उनकी रचना रवीन्द्रनाथ ने नहीं टैगोर ने की थी बंगाल से बाहर भारत में रवीन्द्र नाथ को उनकी अनुदित पुस्तकों के कारण जानते हैं, न कि उनकी बंगला रचनाओं के कारण। बंगला देश ने अपने राष्ट्रगान के रूप मे आमार सानार बांगला' को इसलिए अपनाया क्योंकि रवीन्द्रनाथ ने उसकी रचना की थी। परंतु जन गण मन' भारत का राष्ट्रगान इसलिए बना क्योंकि टैगोर ने ही लिखा था।

संभवतः उनके ये शब्द सबसे अधिक प्रेरणादायक हैं:
जहां मन भयरहित हो तथा मस्तक ऊँचा हो।
जहां ज्ञान उन्मुक्त हो।
जहां विश्व दीवारों से घिरे छोटे छोटे दायरों में न बंटा हो,
स्वतंत्रता के उस स्वर्ग में, हे पिता, मेरा देश जागे।

यह सत्य है कि जीवन के अन्तिम वर्षो में अपनी रचनाओं के अपने द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवादों पर वह प्रायः खेद व्यक्त करते थे। इस विषय पर लिखते उन्हें अमिय चक्रवर्ती (Amiya Chakravety) को लिखे एक पत्र में उन्होंने इसे 'आत्म उपहास' की संज्ञा दी थी। विलियम रोथेनस्टीन (Wiliam Rothenstein) को उन्होंने एक पत्र में लिखा था, ''पाश्चात्य जगत में उनकी प्रसिद्धि एक संयोगमात्र ही थी''। उन्होंने कहा कि उनके अंग्रेजी रूपान्तरों में भावों की वह ऊष्मा नहीं है जो उनकी मौलिक बंगला कृतियों मे है। उनकी बंगला कृतियों में जो जीवन की सहजता है, उससे उन के पश्चिमी प्रशंसक कभी परिचित नहीं हो सकते। क्या ही अच्छा होता कि उनके लेखन की आत्मा को येट्स के द्वारा न जानकर जगत उस समय तक प्रतीक्षा करता जब उसको उसके पर्यावरण में देखा और माना जा सकता। वास्तव में उनके अनुवादों में जो चित्र उभर कर सामने आया और जिसे येट्स ने गीतांजलि की भूमिका में प्रस्तुत किया, वह तो कवि के लिए एक बोझ सा बन गया था।

इससे उसकी काव्य प्रतिभा सकुचित हो गई थी। बंगला में जो उनका दक्ष वाक् चातुर्य था और जिसका एक अपना आकर्षण था और जिसे पाश्चात्य लोग कभी सोच भी नहीं सकते थे, वह खो सा गया था। इसी प्रकार उन्होंने 1921 में फ्रीयर एण्ड्रूस (Freer Andrews) को न्यूयॉर्क से लिखे पत्र में लिखा था:

जब वसंत का झोंका वायु में आता है तो मैं हड़बड़ा कर अपने संदेश भेजने के भयानक स्वप्न से जाग जाता हूँ और ऐसा लगता है कि मैं उन व्यर्थ से घुमक्कड़ लोगों के झुण्ड में हूँ जो बिना कारण ही अपना राग अलापते रहते हैं और मुझे अपने चारों ओर एक गूंज भी सुनाई देती है, जो कहती है कि ''यह व्यक्ति तो गया धुरी से''। मेरा कण्ठ अवरूद्ध हो जाता है।

इस पर भी रवीन्द्रनाथ और टैगोर दो अलग–अलग व्यक्ति नहीं थे। उन्हें अन्याय पूर्ण संसार चुभता था। वह गांधी जी से विरोध रखते थे और द्वितीय विश्व युद्ध उन्हें ''सभ्यता का संकट प्रतीत होता था।''

1932 में लिखित ''प्रश्न' सर्वाधिक महत्वपूर्ण कविताओं मे से एक है। उसके स्वर में रवीन्द्रनाथ्ज्ञ और टैगोर दोनों मिल जाते हैं–

आज मेरी वाणी अवरू0 है, मेरे कण्ठ में कोई संगीत नहीं है।
काली अंधेरी रात ने
मेरे संसार को दुःस्वप्न में बन्दी बना दिया है

अतएव
मैं अपनी आंखों में आंसू लिए उनसे पूछता हूँ (उनसे)
जिन्होंने आपकी वायु को विषाक्त कर दिया है
जिन्होंने आपसे संसार में प्रकाश को बुझा दिया है क्या अपने उन्हें क्षमा कर दिया है क्या आप उनसे प्रेम करते हैं?

यह कवि ने अन्तर्द्वन्द्व को दर्शाता है।

विश्वभारती उन्हें सर्वाधिक प्रिय था, और इसके निर्माण में उन्हें सर्वाधिक कष्ट हुआ। यहां रवीन्द्रनाथ और टैगोर एकाकार हो जाते हैं। शान्ति निकेतन आने वाला संवेदनशील व्यक्ति दोहरी आत्मा से रू–ब–रू होता है। उसे यहां उस रवीन्द्रनाथ से साक्षात्कार होगा जो 1902 में अपनी पत्नी के देहान्त के उपरान्त सपरिवार यहां आया, जिन्हें उनके समृद्ध सगे सम्बन्धी बंगाल के पुनत्थान की प्रमुख प्रवृत्तियों का सूत्रधार मानते थे, और जो अपने विधार्थियों को आम के वृक्षों के नीचे छाया में पढ़ाते थे, और जो कांच के प्रार्थनागृह में सारगर्भित बंगला मे उपदेश देते थे, जिन्होंने रेखाएं खींची और रंग–भरे, जिन्होंने उत्तरायण के विभिन्न घंटों में चक्कर काटते हुए निद्रा रहित रातें बिताई। ऐसे टैगोर की उपस्थिति का यहां एहसास होगा। उनसे प्रभावित होकर अनेक सुपसिद्ध विदेशी विद्वान यहां पढ़ाने के लिए आए। टैगोर को वृद्धावस्था में ऑक्सफर्ड ने 'डाक्टरेट' की मानद उपाधि दी। रवीन्द्र भवन के अभिलेखागार में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय पत्राचार की बहुत बड़ी संख्या विद्यमान है।

यहां दोनों व्यक्ति स्पष्ट रूप से अलग–अलग दीखते हैं एक ओर तो वह टैगोर है जिसके अनेक ग्रन्थों पर लिखी यह टिप्पणियां और आलोचनाएं हैं जिन्हें पश्चिमी आलोचकों ने लिखा और जो बंगला न तो पूर्णरूप से समझते अथवा जानते थे और इसीलिए उनकी रचनाएं केवल टैगोर के ऊपरी तल को ही छू सकती है और न ही उन्होंने रवीन्द्रनाथ का ठीक–ठीक मूल्यांकन किया। दूसरी ओर वहां उस रवीन्द्रनाथ की आत्मा का साक्षात्कार होता है जिससे प्रेरित होकर बंगला देश न केवल अपने राष्ट्रगान में उन्हें स्मरण करता है अपितु रवीन्द्र संगत अपने रेडियो और टी.वी. पर भी गाता है। यहां धम्रन्धता काम नहीं करती केवल बंगला की सुनहरी भूमि और महान नदियों की महिमा प्रमुख है। यदि पूर्वी और पाश्चात्य व्यक्तित्व में विरोधाभास का आभास दीखता है तो एकता भी यही है कि और सम्भवतः समस्त उपमहाद्वीप में भी यह विद्यमान है।

जो भी हो यह मानना होगा कि उनके व्यक्तित्व कविताओं, नाटकों, समस्त साहित्य, गद्य और पद्य कला और नैतिकता, आदर्शवाद और यथार्थवाद, धर्म और विज्ञान सभी में एक सामंजस्य और संतुलन प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और यही उनकी आत्मा है। निम्नलिखित कुछ पंक्तियां उनके मन की स्थिति को दर्शाते हैं:

कोलाहल पूर्ण दिन
रात्रि की ओर दौड़ रहे हैं
समुद्र की धेय है
इन उफनती हुई नदियों का
वसन्त के अधीर पुष्प
फलित होने को आतुर हैं
व्यग्र मन प्रयत्नशील है
शान्त और सम्पूर्ण होने को

डॉ. टैगोर की कुछ गतिविधियां विशेष रूप से स्मरणीय रहेंगी। 1905 में जब लार्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन की योजना बनाई ताकि भारत में बांटों और राज करों' की नीति स्पष्ट रूप से चलाई जा सके तो टैगोर इस के विरूद्ध खड़े हो गए और इस उद्देण्डता के विरूद्ध आवाज उठाई। उन्होंने स्वदेशी का प्रचार किया। स्वदेश प्रेम से ओतप्रोत कई रचनाएं गढ़ी तथा तीक्षण प्रतिक्रिया से भरे लेख लिखे। उन्होंने यह अनुभव किया कि भारत का उद्धार ग्रामों से ही होगा तथा उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र रवीन्द्रनाथ को अमरीका में कृषि ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजा। उन्होंने एक राष्ट्रीय शिक्षा समिति (National Council for Education) की रूपरेखा भी तैयार की।

उन्हें यह भी लगा कि भारतीय शिक्षा प्रणाली में त्रुटियों के कारण ही भारत में निर्धनता, हीन भावना तथा आत्मविश्वास की कमी है। अतएव उन्होंने एक नवीन शिक्षा पद्धति का गठन किया तथा बोलपुर में अपने

विचारों को साकार करने के लिए एक शिक्षा संस्थान 'शांति निकेतन' बनाया जो आज एक प्रमुख विश्वविद्यालय के रूप में स्थित है।

1940 में ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय की ओर से सर मॉरिस ग्वायर (Sir Maurice Gwayer) ने उन्हें सम्मानार्थ (Honorary) डॉक्टर की उपाधि प्रदान की। उस समय एक द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ हो चुका था। अंग्रेजी संसद में जब एक सदस्य ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विषय में कुछ कटु वाक्य कहे तो टैगोर ने एक तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की तथा सभ्यता पर संकट (Crisis in Civilization) नामक शीर्षक से एक लेख लिखा तथा आशा व्यक्त की कि ''संभवतः पूर्व की दिशा से एक नया सूर्य निकलेगा जो नया प्रकाश देते हुए अपनी विरासत को पुनः प्राप्त कर लेगा।''

श्रीमान् हुमायूँ कबीर ने उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर उनके चुने हुए लेखों के संग्रह की भूमिका में उनके विषय में कुछ शब्द कहे हैं जो बहुत महत्वपूर्ण हैं। शीर्षक है– एक विश्वात्मा की ओर'। उनके बहु आयामी प्रतिभाशाली व्यक्तित्व को देख कर हम स्तम्भित रह जाते हैं। यों तो वह कवि थे परन्तु 'उनकी रूचि केवल कविता तक ही सीमित नहीं थी। यदि उनके समस्त कार्य के आकार को देखे तो बहुत थोड़े लोग ही होंगे। जो उनकी बराबरी कर सकें। उनकी कविताओं की संख्या 1000 से अधिक है, जो सहस्र से अधिक गीत, अनेकों कहानियां, उपन्यास, नाटक तथा भिन्न–भिन्न विषयों पर अनेकों लेख। यदि इन सब का गुणत्व परखा जाए तो केवल सर्वोत्तम व्यक्ति ही उनकी ऊंचाई को पा सकता है। वह बहुत ऊंची कोटि के संगीतज्ञ भी थे। जब उन्होंने चित्र कला में हाथ डाला तो उस समय उनकी आयु लगभग 70 वर्ष थी और फिर अगले 10 वर्षो में लगभग 3000 चित्र बना डाले, जिनमें से कुछ तो बहुत उच्चकोटि के हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने शिक्षा, धार्मिक क्षेत्र, राजनैतिक क्षेत्र तथा सामाजिक सधारों के क्षेत्र में, ग्रामीण पुनुर्त्थान तथा आर्थिक पुनर्निमाण में भी बहुत योगदान किया।''

प्रेमचन्द्र (1880–1936)

प्रेमचन्द्र का मूल नाम धनपतराय श्रीवास्तव था। उनका जन्म 31 जुलाई 1880 को बनारस के समीप ग्राम लमही में हुआ था। उन्होंने उर्दू और हिन्दी मे अनेक उपन्यास तथा ढेंरों कहानियां लिखीं। उन्होंने भारतीय विषयों को लेकर पश्चिमी साहित्यिक शैली 'लघु कथा' और फिर उपन्यास में रचना करने की पहल की।

प्रेमचन्द्र ने 1921 तक एक स्कूल में शिक्षक के रूप में कार्य किया। उस वर्ष उन्होंने गांधी जी के असहयोग आन्दोलन के आह्वान पर अध्यापक का पद छोड़कर पूर्ण रूप से लेखन में जुट गए। साहित्यिक जगत में उनकी पहचान पहले पहल पत्र–पत्रिकाओं में एक उर्दू के लेखक के रूप में बनी। बंगाल को छोड़ शेष उत्तर भारत में प्रेमचन्द्र के आगमन से पूर्व लघु कथा को साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता नहीं थी। प्रेमचन्द्र को अधिक ख्याति उनके हिन्दी लेखन के कारण ही प्राप्त हुई। हिन्दी में लेखन प्रारंभ करने से पूर्व उन्हें इस भाषा पर पूर्ण अधिकार भी नहीं था और इसलिए उनकी हिन्दी रचनाओं में भी उर्दू के शब्दों का पर्याप्त प्रयोग होता है। उनका प्रथम बड़ा उपन्यास 'सेवा सदन' 1918 में प्रकाशित हुआ। इसकी विषयवस्तु का आधार है वेश्याओं की समस्याएं तथा भारतीय मध्यम वर्ग का नैतिक भ्रष्टाचार। प्रेमचन्द्र ने भारतीय समाज में विद्यमान नैतिक बुराइयों, व्यवस्थित विवाह (arranged marriages), स्त्रियो की दुर्दशा, अंग्रेजी नौकरशाही का अत्याचार, साहूकारों तथा अधिकारी वर्ग का ग्रामीण कृषकों के शोषण पर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। यह वे वर्ष थे जब भारत में पुर्नजागरण, राजनैतिक जागरूकता, धार्मिक सुधार तथा राजनैतिक बेचैनी का दौर था।

प्रेमचन्द्र के सृजनात्मक लेखन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण उनकी 250 से अधिक कहानियां हैं। यह कहानियां 'मानसरोवर' नामक कहानी संग्रह के विभिन्न खण्डों में संकलित है। शिल्प और विधान की दृष्टि से यह सुगठित तथा लक्षित हैं उपन्यासों की भान्ति इनकी पृष्ठभूमि भी उत्तरी भारत का ग्रामीण जीवन है। यथार्थ परक होने के कारण लेखक पाठक के मन को ग्राह लेता है।

प्रायः वह एक मनोवैज्ञानिक सत्य अथवा नैतिक प्रश्न को लेकर अपनी कथा लिखते हैं। उनके स्त्री पात्र मूक हैं। अन्याय के विरूद्ध आवाज नहीं उठाते। लेखकों की भूमिका सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों को उजागर करने में बहुत महत्वपूर्ण होती है। प्रेमचन्द्र के स्त्रीपात्र अनायास ही पाठक के ह्रदय को छूते हैं और उनको प्रभावित किए बिना नहीं रहते। परिणामस्वरूप यदि पिछले सौ वर्षो मे उत्तरी भारत के नारी समाज ने उन्नति की है तो इसका श्रेय प्रेमचन्द्र को भी जाता है।

प्रोफेसर आलोक राय जो उनके पौत्र हैं– के अनुसार प्रेमचन्द्र एक महान लेखक थे। उन्होंने अपने समकालीन उत्तर भारत के सांस्कृतिक शब्द चित्र अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किए। उनके लेखन को किसी सीमित दायरे मे बन्द नहीं किया जा सकता। परन्तु इसके बावजूद उन्हें कोई विशेष सम्मान नहीं दिया गया। मुझे तो नहीं परंतु मेरे पिताजी को यह अधिक दुःखदायी था। मैं अपने इस सुप्रसिद्ध पूर्वज द्वारा ठगे जाने की भावना को लेकर बड़ा हुआ जो मेरे जन्म से ठीक 10 वर्ष पूर्व मृत्यु ग्रस्त हो गए। इसलिए मेरा विषय विवेकहीन पिता दादू नहीं अपितु प्रेमचन्द्र है।

रुडयार्ड किपलिंग के समर्थक औखैल को बहुत प्रयत्नपूर्वक यह कहना पड़ा कि किस प्रकार किपलिंग अंग्रेजी साहित्य मे कहावत (byword) सा बन गया है चाहे लोग उसे अंग्रेजी राज के समर्थक के रूप में कितना ही बुरा क्यों न समझें। यह स्थान केवल प्रतिभाशील व्यक्ति को ही मिलता है।

उसी प्रकार महान प्रतिभा के धनी मुंशी प्रेमचन्द्र भी अमरत्व को प्राप्त हो गए हैं। जहां भी स्कूलों तथा कॉलेजों में हिन्दी एक भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। यह सम्भव नही नहीं कि प्रेमचन्द्र की कहानी किसी न किसी पाठ्य पुस्तक में विद्यमान न हो। वह भी किपलिंग द्वारा की गई चुनौती प्रस्तुत करते हैं क्योंकि हमारे सामाजिक जीवन के चित्र खींचते हुए उनके अनेक वाक्य हमारी लोकोक्तियों में परिवर्तित हो गए हैं।

ठीक है वह मर गए हैं परंतु वह समाप्त नहीं हो गए। उनके दर्शाए हुए ग्रामीण निर्धनता के चित्र साहूकारों का शोषण और जमींदारों का उत्पीड़न आज भी चल रहा है, किसी राज्य मे कम किसी में अधिक किसी देश में कुछ सीमा तक किसी देश में अधिक। इसलिए वह सार्वभौमिक थे।

कितने लोग हैं जो एक लंगोटी वाले नेता के आह्वान पर, अपनी छोटी सी नौकरी छोड़ कर निर्धन जीवन व्यतीत करने को उद्यत हो जाएंगे। सम्भवतः वह आज भी प्रासंगिक हैं और रहेंगे।

प्रेमचन्द्र के स्वर समूचे युग का स्वर था। देश की पराधीनता एक यथार्थ थी, स्वाधीनता एक आदर्श थी। स्वतंत्रता का संघर्ष यथार्थ से आदर्श की ओर एक प्रमाण था इसलिए प्रेमचन्द्र की यात्रा यथाथ्र से आदर्श की ओर एक यात्रा दिखाई देती है।

अपने जीवन के अन्त तक आते आते उनका आदर्श से मोहभंग हो गया था, 'कफन' और 'गोदान' में आदर्श अनुपस्थित है।

निष्कर्ष

भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न स्थानीय भाषाओं का प्रयोग होता था, अतएव अंग्रेजी भाषा ही इस वर्ग की सामान्य भाषा अथवा सम्पर्क भाषा बन गई, इस भाषा का एक अन्य लाभ यह भी था कि इससे रोजगार प्राप्त करना भी आसान था। अंग्रेजी को अपनी नई–नई योजनाओं के लिए, जैसे–रेल, तार, डाकघर, अस्पताल, सेना तथा अन्य विभागों के लिए अनको लोग चाहिए थे तथा अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों की आवश्यकता थी। दूसरे कई नए व्यवसायों, वकील, डाक्टर, अध्यापक तथा समाचार पत्रों इत्यादि में काम करने के लिए बहुत से अवसर प्राप्त थे। अतएव बहुत से अंग्रेजी मासिक, पाक्षिक तथा साप्ताहिक पत्र–पत्रिकाएं छपने लगीं तथा ज्ञान का विस्तार हुआ।

सन्दर्भ सूची

1. बर्नस, मरगिरिता : द इंडियन प्रेस (1940)
2. गेट्स–रिड : द इंडियन प्रेस वर्ष बुक (येनुयल)
3. घोष, एच. पी. : द न्यूजपेपर इन इंडिया (1952)
4. लोभट पट : जर्नलिस्म इन इंडिया (1928)
5. रिपोर्ट ऑफ द प्रेस कमीशनः 3 पार्ट
6. अहमद, अजीजः इस्लामिक मार्डनिज्म इन इंडिया एंड पाकिस्तान
7. हैमसत, सी. एच. : इंडियन नेशनलिज्म एंड सोशल रिफोर्म
8. नारायण, बी. ए. : सोशल हिस्ट्री ऑफ इंडियाः 19वीं सेन्टूरी
9. पारिख मनिलालः ब्रह्म समाज
10. जार्डन, जे. टी. एफ. : दयानंद सरस्वती